बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 123

ज्यादा सख्ती

सरकार ने वर्ष 2019-20 के बजट में भी देश की अर्थव्यवस्था का डिजिटलीकरण करने पर जोर बरकरार रखा है, खासतौर पर डिजिटल भुगतान के मामलों में। अर्थव्यवस्था के जिन हिस्सों में अभी नकदी आधारित लेनदेन हो रहा है, उसे सीमित करने की कोशिश में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने कहा कि अगर किसी एक बैंक खाते से एक वर्ष में एक करोड़ रुपये से अधिक की निकासी होती है तो उसके स्रोत पर कर लगेगा। हालांकि इसे लेकर बहुत अधिक आपत्ति की गुंजाइश नहीं है क्योंकि यह नोटबंदी के समय प्रस्तावित कई अन्य प्रावधानों की तुलना में काफी कम कठोर है।

बहरहाल, बजट में डिजिटल भुगतान को लेकर जो नीतिगत रूप रेखा प्रस्तुत की गई है उनका नए सिरे से परीक्षण किया जाना चाहिए। वित्त मंत्री ने संकेत दिया है कि कम लागत वाले डिजिटल भुगतान माध्यम मसलन भीम यूपीआई, यूपीआई क्यूआर कोड, आधार पे, कुछ डेबिट कार्ड, एनईएफटी, आरटीजीएस आदि का इस्तेमाल करके नकदी रहित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया जा सकता है। ऐसा करके अर्थव्यवस्था में नकदी का प्रयोग कम होगा। यह प्रस्ताव भी रखा गया कि सालाना 50 करोड़ रुपये से अधिक के कारोबार वाले कारोबारी प्रतिष्ठानों को ऐसे कम लागत वाले डिजिटल भुगतान माध्यमों की सुविधा अपने ग्राहकों को देनी चाहिए और ग्राहकों तथा कारोबारियों पर मर्चेंट डिस्काउंट रेट (एमडीआर) या कोई अन्य शुल्क नहीं लगाया जाना चाहिए।

ऐसा करने से मझोले आकार की दुकानों पर ऐसी डिजिटल भुगतान प्रणाली उपलब्ध कराने का दबाव बनेगा। पहली बात तो यह कि इसे लेकर लॉबीइंग की काफी संभावना है और सैद्धांतिक रूप से ही इससे दूरी बनाई जानी चाहिए। परंतु ज्यादा अहम बात यह है कि यह दुकानदारों, भुगतान कंपनियों और वित्तीय संस्थानों खासकर बैंकों पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि वे अपने वाणिज्यिक हितों को ध्यान में रखकर निर्णय लें। केवल तभी एक स्थायी डिजिटल भुगतान व्यवस्था कायम हो सकेगी। एक ऐसा भुगतान ढांचा जो सरकार के आदेश और नियमन पर आधारित हो, वह अक्षम और अनाकर्षक साबित होगा। इकलौता स्थायी डिजिटल वित्तीय ढांचा वह होगा जहां शृंखला की हर कड़ी पर यानी ग्राहक और व्यापारी से लेकर बैंक और कंपनियों तक मौद्रिक लाभ सक्षम तरीके से साझा किया जाए। इसके लिए स्वैच्छिक रूप से डिजिटल लेनदेन को अपनाना होगा, न कि दबाव में।

यह कहा जा सकता है कि सरकार के कम नकदी वाली अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के कई लाभ हैं और एक बार ऐसा लेनदेन पूरा होने के बाद इसके लाभ खुद ब खुद सामने आएंगे। ऐसी दलीलें खासतौर पर नोटबंदी के बाद ऐसी दलीलों को लेकर सावधानी बरतनी होगी। इतना ही नहीं ऐसे किसी भी आदेश की लागत का भी भलीभांति आकलन किया जाना चाहिए।

अगर सरकार को लगता है कि कम नकदी वाली अर्थव्यवस्था को अपनाने के अधिक लाभ हैं तो आर्थिक दलील यह कहती है कि उसे इसकी लागत खुद उठानी चाहिए। एमडीआर कुछ डिजिटल भुगतान से राजस्व का बड़ा स्रोत रहा है। उसे खत्म करना इस दलील के प्रतिकूल है। इस मामले में वित्त मंत्रालय ने कहा कि भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य बैंक इस लागत को बचत के सहारे झेल लेंगे जो लोगों के डिजिटल भुगतान अपनाने से उन्हें कम नकदी की साज संभाल के चलते होगी। अगर ऐसी कोई बचत होती है तो बैंक अपने दम पर ऐसा निर्णय ले सकते हैं और उन्हें इसकी इजाजत मिलनी चाहिए। ऐसे में संभावना यही है कि ऐसी बचत अभी भविष्य में दूर की कौड़ी है। उस स्थिति में सरकार को नीतिगत प्राथमिकताओं की लागत वहन करने का तरीका निकालना चाहिए, बजाय कि बैंकों या व्यापारियों पर दबाव बनाने के।

अजय मोहंती

नए बजट में शामिल हैं वही पुरानी बातें

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण द्वारा प्रस्तुत केंद्रीय बजट में कोई नई बात शामिल नहीं है। बजट भाषण में तमाम ऐसी बातें कही गईं जिनका बजट से कोई लेनादेना ही नहीं है। विस्तार से जानकारी दे रहे हैं देवाशिष बसु

आम बजट आकर चला गया। यह भी तमाम अन्य बजट की तरह ही है। हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी उद्योग जगत ने बजट से अपनी मांग जाहिर करते हुए ज्ञापन सौंपे, कारोबारियों ने अपनी इच्छाएं प्रकट कीं और वित्तीय विशेषज्ञों, विश्लेषकों और फंड प्रबंधकों ने उम्मीद जताई कि संसद में जबरदस्त बहुमत वाली नई सरकार सुधारों को अंजाम देगी। जाहिर तौर पर बीते 25 वर्ष से देश में सुधारों का आगमन हो ही रहा है। ठीक सैमुएल बेकेट के नाटक गॉडॉट की तरह।

बजट के दिन हमने सामान्य प्रक्रिया के तहत यह देखना शुरू किया कि वित्त मंत्री ने प्रस्तावों, विचारों और कर बदलावों के रूप में क्या पेशकश की है। आइए देखते हैं कि बाजार और कारोबारी क्या उम्मीद कर रहे थे और उन्हें वास्तव में क्या मिला? कारोबारी जगत की कई उम्मीदें थीं। मिसाल के तौर पर दीर्घावधि के पूंजीगत लाभ कर को समाप्त करना, वित्तीय कंपनियों के लिए प्रोत्साहन पैकेज, आय कर स्लैब में बदलाव और निजीकरण को बढ़ावा देना आदि। परंतु इसके बदले हमें जो मिला उनमें शेयरों की पुनर्खरीद और प्रवर्तक अंशधारिता का जबरन नकदीकरण 25 फीसदी से बढ़ाकर 35 फीसदी करने जैसे प्रतिगामी कदम शामिल हैं। यह दशकों से लंबित था।

उनके भाषण के मुख्य हिस्सों का केंद्रीय बजट से कोई लेनादेना नहीं था। ये नीतिगत घोषणाएं और वक्तव्य थे जिनको कभी भी घोषित किया जा सकता था। उदाहरण के लिए वित्त मंत्री ने बैंकों में 70,000 करोड़ रुपये की पूंजी डालने की घोषणा की। वित्त मंत्री रहते हुए अरुण जेटली ने अक्टूबर 2017 में बैंकों में 2.11 लाख करोड़ रुपये की पूंजी डालने की घोषणा की थी। यह घोषणा बजट में नहीं की गई थी। वित्त मंत्री के बजट भाषण का कुछ हिस्सा तो केवल घोषणाएं था। सूचीबद्ध कंपनियों के प्रवर्तकों को अपनी हिस्सेदारी बेचकर 65 फीसदी या उससे कम करना न तो व्यय है और न ही संसाधन बढ़ाने वाला प्रस्ताव। हकीकत में तो यह किसी तरह का प्रस्ताव भी नहीं है। यह भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) को दिया गया एक सुझाव भर था। इससे भी बुरी बात यह है कि यह विचार 2006 का है लेकिन सेबी द्वारा तारीख तय करने के बावजूद इसे लागू करने की तारीख आती और जाती रही। हालांकि सरकार अब तक सरकारी कंपनियों में अपनी हिस्सेदारी को 75 फीसदी से कम नहीं कर सकी है लेकिन बजट भाषण में बढ़चढ़कर इसकी हिस्सेदारी 65 फीसदी तक कम करने की बात कही जा रही है।

तमाम और ऐसे विचार हैं जिनका आम बजट से कोई लेनादेना नहीं है। उदाहरण के लिए नई शिक्षा नीति, यात्री माल वहन सेवाओं के तेज विकास के लिए निजी-सार्वजनिक भागीदारी, राष्ट्रीय राजमार्ग ग्रिड तैयार करने के लिए राष्ट्रीय राजमार्ग कार्यक्रम का पुनर्गठन और सड़कों तथा रेल पर से भीड़भाड़ कम करने के क्रम में माल ढुलाई के लिए नदियों का इस्तेमाल करना आदि। ये बातें मैं सन 1985 से सुन रहा हूं जब मैं पत्रकारिता में आया था। इसके बाद बात आती है 100 लाख करोड़ रुपये की जिसे अगले पांच वर्ष में बुनियादी क्षेत्र में निवेश किया जाना है। इन बड़े आंकड़ों का जिक्र करने के बाद वित्त मंत्री ने कहा कि विकास वित्त संस्थानों (डीएफआई) के जरिये फंड की आवक और ढांचा सुनिश्चित करने के लिए विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाएगा। ये संस्थान कौन से होंगे? क्योंकि भारतीय डीएफआई चरणबद्ध तरीके से बाहर हो चुके हैं और सन 1990 के बाद उन्हें योजनापूर्वक बैंकों में बदल दिया गया है।

कर प्रावधानों में विशिष्ट बदलावों (आमतौर पर कर में बढ़ोतरी) के अलावा बजट घोषणाओं में कुछ खास सार्थक नहीं है। सच तो यही है कि बजट में घोषित बातों से बहुत अधिक विचलन देखने को मिलेगा और कई नीतिगत पहल बाद में घोषित की जाएंगी। वैसे भी मोदी प्रधानमंत्री हैं तो तमाम कार्यक्रम तैयार करने, उन पर नियंत्रण और उनका क्रियान्वयन उनके ही पास रहता है। यह बात दीगर है कि हमेशा बहुत अच्छे नतीजे नहीं सामने आते। बजट के बाद मोदी ने रस्मी तौर पर यह घोषणा की कि बजट देश को समृद्ध और लोगों को समर्थ बनाएगा। आलोचना के प्रति संवेदनशील मोदी ने बजट की आलोचना करने वालों को खारिज करते हुए कहा कि ऐसे लोग पेशेवर निराशावादी हैं। हकीकत में उन्होंने हम जैसे लोगों को खारिज कर दिया और अब वह अपनी इच्छा के मुताबिक आगे काम करेंगे। यह निजाम क्या कहता है इस पर ध्यान देने के बजाय हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि यह क्या करता है।

हर आम बजट में यह कवायद होती है कि सरकार के फाइनैंस की कमियों को छिपाया जाए। यह सरकार ऐसी है कि वित्त मंत्री ने राजकोषीय घाटे तक का जिक्र नहीं किया जबकि अर्थशास्त्री प्राय: इस पर चर्चा करते हैं। बजट का दूसरा अहम लक्ष्य है इस बात पर चर्चा करना कि सरकार अगले वर्ष कितनी राशि जुटाएगी। इसके लिए लोगों और व्यवस्था के सबसे उत्पादक हिस्से यानी उद्यमों पर कर लगाया जाता है। इसकी मदद से ही सरकार चलती है।

कर राजनेताओं को यह सुविधा भी देते हैं कि वे अपनी समाजवादी योजनाओं को चलाते रह सकें। ये योजनाएं उन्हें चुनाव जिताने में मददगार साबित होती हैं। अब तक किसी बजट में सरकार की पूंजीगत व्यय की समस्या को हल नहीं किया गया जबकि इसमें सुधार होने से काफी बदलाव आ सकता है। परंतु कारोबारों, बैंक, शिक्षा और परिवहन, बुनियादी ढांचा और स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में सरकार की मजबूत पकड़ के चलते साल दर साल पूंजी भारी पैमाने पर नष्ट हो रही है। यही कारण है कि लोगों से अधिक से अधिक संसाधन जुटाए जा रहे हैं। इसका असर उपभोक्ता मांग और कारोबारी व्यय पर पड़ रहा है। जबकि यह क्षेत्र वृद्धि और रोजगार तैयार कर सकता है।

हम यह सब देखते हैं और कई बार इसका विरोध भी करते हैं। इसके बावजूद साल दर साल लोग इस अक्षम ढांचे को स्वीकार करते आ रहे हैं। यह आशा करना बेमानी है कि मामूली छेड़छाड़ से कोई बड़ा बदलाव देखने को मिलेगा। एक कहावत है जिसका अर्थ है कि यदि आपने एक बार मुझे बेवकूफ बनाया तो आपको शर्म आनी चाहिए लेकिन अगर मैं दोबारा बेवकूफ बना तो यह मेरे लिए शर्म की बात है। यहां तो हम बार-बार बेवकूफ बन रहे हैं।

न्यायपालिका के लिए नहीं है 'बही-खाते' में कोई नई बात

अदालती आईना

एम जे एंटनी

धन की कमी से जूझ रही न्यायपालिका के वित्तीय संसाधन जटिल एवं अलग-अलग हैं। अदालतों का कामकाज चलाने के लिए केंद्र या राज्यों के बजट में अलग से कोई प्रावधान नहीं होता है। इसके चलते केंद्र एवं राज्यों के विभिन्न अधिकरणों के बीच काफी सौदेबाजी और दोषारोपण होता रहता है।

केंद्रीय बजट सर्वोच्च न्यायालय के लिए फंड आवंटित करता है लेकिन इसमें कर्मचारियों के वेतन एवं प्रशासनिक खर्च भी शामिल होते हैं। नए बजट में सर्वोच्च न्यायालय के खर्च के लिए 269.48 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है और इतनी ही राशि न्याय प्रशासन के लिए दी गई है। न्यायाधीशों के अनुरोध के बावजूद बजट में मामूली वृद्धि ही की गई है। पहले के तीन बजटों में 258.53 करोड़, 251.06 करोड़ और 255 करोड़ रुपये दिए गए थे। न्यायाधीशों का कहना है कि यह राशि समूचे बजट का महज 0.2 फीसदी ही है।

वर्ष 2019-20 के आम बजट में कानून एवं न्याय मंत्रालय को 3,055 करोड़ रुपये देने का जिक्र है जो गत दो वर्षों में आवंटित 6,326 करोड़ और 4,386 करोड़ रुपये से काफी कम है। इस राशि को सचिवालय, कर अधिकरणों, ई-अदालतों के दूसरे चरण, न्यायिक सुधारों पर अध्ययन एवं शोध योजना और आम लोगों की पहुंच बढ़ाने के अभियान पर खर्च किया जाना है। इसकी तुलना में कपड़ा मंत्रालय को 4,831 करोड़ रुपये और सांख्यिकी मंत्रालय को 5,231 करोड़ रुपये देने का प्रावधान है। कानून मंत्रालय को आवंटित फंड का कुछ हिस्सा चुनाव आयोग को भी जाता है लेकिन उसके लिए बजट में अलग मद है।

उच्च न्यायालयों और निचली अदालतों का संचालन राज्य सरकारें करती हैं। लेकिन केंद्रीय बजट के मॉडल होने से राज्यों से कुछ अलग की कल्पना शायद ही की जा सकती है। मुकदमे दायर करने के मामले में केंद्र एवं राज्य सरकारें सबसे आगे हैं। करीब 60 फीसदी विचाराधीन मामले केंद्रीय कानूनों के बारे में हैं। लेकिन राज्यों में इन अदालतों के लिए केंद्र अपनी तरफ से समुचित अंशदान नहीं देता है।

जहां दूसरे विभाग अपना खर्च आवंटित राशि से ही चलाते हैं वहीं न्यायपालिका अपने व्यय की आधे से अधिक राशि का इंतजाम अदालती फीस, स्टांप शुल्क, जमाओं पर ब्याज और अन्य साधनों से कर लेती है। उसके बाद भी अदालतों के रजिस्ट्रार को बुनियादी जरूरतों के लिए विधि सचिवों के समक्ष याचना करनी पड़ती है।

भले ही संविधान की समवर्ती सूची केंद्र को नए कानून का वित्तीय बोझ उठाने के लिए बाध्यकारी बनाती है लेकिन असल में यह भार राज्यों पर ही डाला गया है क्योंकि अधीनस्थ अदालतों की देखरेख राज्य सरकारों के जिम्मे होता है।

अपर्याप्त आवंटन के दुष्परिणाम हर जगह दिखते हैं। आर्थिक समीक्षा में भी इस संकटपूर्ण स्थिति के बारे में उल्लेख है। समीक्षा में अदालतों के भीतर लंबित करोड़ों मुकदमों का भी जिक्र है। जिला अदालतों में 3.04 करोड़ मामले विचाराधीन हैं जो कुल अदालती मामलों का 87 फीसदी हैं। न्यायाधीशों के लिए कुल 22,750 पद स्वीकृत हैं लेकिन केवल 17,891 पद ही भरे गए हैं। हर साल 746 पद रिक्त हो जाते हैं। सौ फीसदी निपटान का लक्ष्य हासिल करने के लिए एक साल में 2,279 अतिरिक्त न्यायाधीशों की जरूरत है। पुराने लंबित मामलों का पांच वर्षों में निपटारा करने के लिए 8,152 अतिरिक्त न्यायाधीशों की जरूरत होगी। इन सभी मोर्चों पर उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडिशा और पश्चिम बंगाल की स्थिति सबसे खराब है। विधि आयोग ने प्रति 10 लाख आबादी पर 50 न्यायाधीश रखे जाने की अनुशंसा की हुई है लेकिन वर्तमान में यह अनुपात 10 लाख पर 10 न्यायाधीश का ही है।

आर्थिक समीक्षा के मुताबिक अनुबंध प्रवर्तन और फैसले आने में लगने वाला लंबा समय कारोबारी सुगमता की राह में सबसे बड़े अवरोध हैं। लेकिन वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने बजट भाषण में इस गहरे संकट का उल्लेख तक नहीं किया। उन्होंने वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली या लोक अदालतों के बारे में एक भी शब्द नहीं कहा।

कई मुख्य न्यायाधीश न्यायपालिका को लगातार नजरअंदाज किए जाने का मुद्दा उठा चुके हैं। मौजूदा मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई ने गत महीने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को तीन पत्र लिखकर न्यायाधीशों की नियुक्ति बढ़ाने और उनकी सेवानिवृत्ति आयु में बढ़ोतरी का अनुरोध किया था। उन्होंने अधीनस्थ अदालतों के दौरों में पाया था कि कुछ न्यायाधीशों के पास अपने चैंबर तक नहीं हैं और उन्हें अदालत के ही एक हिस्से को अपना कार्यालय बनाना पड़ा है। ऐसे हालात का ही नतीजा है कि अदालतों में मामले दशकों तक खिंचते हैं जिसका फायदा खूंखार अपराधियों और भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरे नेताओं को होता है। मामलों के देर तक लंबित रहने से जेलों में भी भीड़ बढ़ जाती है।

कई विधि आयोगों ने न्यायपालिका की समस्याओं का अध्ययन करने के बाद जो रिपोर्ट सौंपी हैं वे अब भी कानून मंत्रालय की मेजों पर धूल खा रही हैं। छह साल पहले उच्चतम न्यायालय की बनाई एक समिति ने कई सुझाव दिए थे। समिति ने कहा था कि संसद के हर अधिवेशन में कई नए कानून पारित किए जाते हैं लेकिन अदालतों पर उनके वित्तीय असर का अध्ययन नहीं किया जाता है।

विधेयकों के साथ आम तौर पर एक वित्तीय ज्ञापन भी होता है जो उस कानून के लागू होने से पड़ने वाले बोझ की तरफ इशारा करता है। लेकिन उन ज्ञापनों में भी नए कानून से न्यायिक प्रणाली पर पड़ने वाले अतिरिक्त बोझ का ब्योरा नहीं होता है। ऐसे में नए कानून से अदालतों में आने वाले नए मामलों के लिए जरूरी व्यय का अनुमान लगाकर समुचित बजट प्रावधान भी किया जाना चाहिए। कुछ न्यायविदों का मानना है कि सरकार के तीसरे स्तंभ न्यायपालिका के लिए एक अलग बजट लाया जाना चाहिए। इस बारे में चर्चा कभी और करते हैं।

कानाफूसी

हेल्पलाइन से मदद नहीं

जुलाई के अंत में आय कर रिटर्न दाखिल करने की समय सीमा भी समाप्त हो जाएगी। जैसे-जैसे यह तारीख करीब आ रही है, कर विभाग को करदाताओं से अजीबोगरीब फोन आने शुरू हो गए हैं। इस बीच आयकर संपर्क केंद्र का हेल्पलाइन नंबर भी उनकी मदद नहीं कर पा रहा है। इस नंबर पर फोन करने पर आगे बढ़ने के लिए लगातार हिंदी और अंग्रेजी भाषा के बीच चयन करने का विकल्प पूछा जाता रहता है। फोन करने वाला चाहे जिस भाषा का चयन करे, हेल्पलाइन से कोई मदद नहीं मिलती। अगर गलती से कोई करदाता देर रात या सुबह जल्दी फोन कर देता है तो स्वचालित प्रक्रिया उससे सुबह 8 से रात 10 बजे के बीच फोन करने को कहती है। कर विभाग को चाहिए कि अमेरिका के तर्ज पर लोगों की समस्याओं के जवाब ई-मेल के माध्यम से दे। अमेरिका में यह प्रक्रिया साल भर चलती रहती है।

व्यापम और राज्य-सम्मान

मध्य प्रदेश की कांग्रेस सरकार ने व्यावसायिक परीक्षा मंडल (व्यापम), जिसे बाद में प्रोफेशनल एक्जामिनेशन बोर्ड (पीईबी) का नाम दे दिया गया था, को बंद करने का निर्णय लिया है। प्रदेश सरकार इसकी जगह राज्य कर्मचारी चयन आयोग की स्थापना करने जा रही है। मुख्यमंत्री कमलनाथ के अनुसार व्यापम भारतीय जनता पार्टी के घोटालों का प्रतीक रहा है, इसलिए इसे बंद करना ही उचित होगा। यह पहला मौका नहीं है जब राज्य सरकार इस संस्थान से दूरी बनाने का प्रयास कर रही है। इससे पहले 2015 में तत्कालीन भाजपा सरकार ने इसका नाम बदलकर पीईबी रख दिया था। तत्कालीन मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने कहा था कि व्यापम नाम राज्य के सम्मान को कम कर रहा है, इसलिए इसे बदला जा रहा है।

आपका पक्ष

बढ़ती आबादी पर नियंत्रण जरूरी

दुनिया में विश्व जनसंख्या दिवस के रूप में एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का जागरूकता अभियान मनाया जाता है। दक्षिण एशिया तथा अफ्रीकी महाद्वीप और विशेष रूप से भारत जनसंख्या विस्फोट से त्रस्त है। भारत में तेजी से बढ़ती जनसंख्या आज की सबसे बड़ी समस्या है। जनसंख्या विस्फोट नकारात्मक व सकारात्मक दोनों ही कारणों से हुआ है। जहां शिक्षा का अभाव, परिवार नियोजन के साधन या उनके सही उपयोग का पता न होना, संतान को ईश्वरीय देन मानना, वर्ग संघर्ष में संख्या बल से विजय पाने की चाह और दूरदृष्टि की कमी आदि कई कारण हैं, जिन्होंने जनसंख्या को तेजी से बढ़ाया है। इसे रोकने के लिए जन जागरूकता बहुत जरूरी है। आम आदमी को बताना व समझाना होगा ही तरक्की के लिए कम बच्चे पैदा करना जरूरी है। कम संतान मतलब कम जिम्मेदारी व अच्छा पालन पोषण है जो अपनी व बच्चों की योग्यता से समाज में

मिलता है और समृद्धि के रास्ते खुलते हैं। जरूरी है कि देश की बढ़ती जनसंख्या को कुशल बनाया जाए। जब तक देश को कुशल श्रम नहीं मिलेगा, तकनीकी का प्रशिक्षण कारगर तरीके से नहीं मिलेगा तब तक जनसंख्या एक बोझ लगती रहेगी। हमें चीन और जापान से सीखना होगा कि मानव संसाधनों का बेहतर व प्रभावशाली उपयोग

जनसंख्या नियंत्रण के लिए सरकार को नए कदम उठाने की जरूरत है

कैसे किया जा सकता है। चीन ने तो अपनी बढ़ती आबादी का उपयोग इस कदर किया कि वह आज विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है। वास्तव में जनसंख्या को बिना किसी धर्म, राजनीति या क्षेत्र से पक्षपात किए, श्रम कुशल बनाकर देश की कुशलता व विकास को सुनिश्चित करना होगा।

दुर्गेश शर्मा, गोरखपुर

डीएनए कानून बनने से काम होगा आसान

संसद में विगत सोमवार को डीएनए प्रौद्योगिकी विनियमन विधेयक 2019 पेश किया गया। इसके तहत राष्ट्रीय डीएनए डेटा बैंक स्थापित करना, डीएनए परीक्षण एवं विश्लेषण करने, डीएनए प्रोफाइल, नमूनों से संबंधित सूचना की सुरक्षा का उपबंध किया गया। इस विधेयक के उद्देश्यों में कहा गया है कि वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित डीएनए प्रौद्योगिकी को किसी बच्चे का मातृत्व और पितृत्व साबित करने मदद मिलेगी। इसके अलावा किसी अपराध स्थल से मिले जैव नमूनों के स्रोत को पहचान करने में अत्यधिक प्रभावी है। डीएनए प्रौद्योगिकी से न्याय प्रक्रिया में विस्तृत उपयोग की संभावना है। दंडिक मामले में इससे जैविक साक्ष्य के माध्यम से अपराधों के अन्वेषण में सहायता मिलेगी। वर्तमान में कई देशों में अपराध से जुड़े मामले में डीएनए काफी प्रभावशाली सबूत माना जाता है। किसी अपराध स्थल से मिले जैविक नमूने से डीएनए की जांच कर अपराधी को पकड़ने में काफी सहायता मिलती है। अमेरिका जैसे विकसित देशों में डीएनए जांच से अपराधी की पहचान करने तथा उसे पकड़ने में काफी मदद मिलती है। आधुनिक दौर में भारत को भी तकनीक का बेहतर उपयोग करना चाहिए। बहरहाल डीएनए एक जैविक डेटा है तथा इसके दुरुपयोग के खतरे की संभावना से इनकार नहीं किया जा सता है। सरकार की यह पहल अच्छी है लेकिन साथ ही इसकी पुख्ता सुरक्षा भी जरूरी है।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।